अध्याय 18

राजस्थान के राजवंश एवं मुगल

राजस्थान के राजपूत राज्यों ने भारत में आने वाले विदेशी आक्रमणकारियों का प्रारंभ से ही प्रतिरोध किया। पृथ्वीराज के बाद मेवाड़ के महाराणा सांगा, मारवाड़ के मालदेव, राव चन्द्रसेन, सिरोही के देवड़ा सूरताण इत्यादि ने इस संघर्ष को जारी रखा।

सन् 1526 ई. के पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी को हराकर बाबर ने दिल्ली पर मुगल साम्राज्य की नींव रखी, किन्तु बाबर की मृत्यु के बाद उसका बेटा हुमायूँ बिहार से आए अफगान सेनापति शेरशाह सूर से हार गया। दिल्ली पर शेरशाह सूर के वंशज अधिक समय तक शासन नहीं संभाल सके। 15 वर्ष के भीतर उसके एक प्रधान हरियाणा में रेवाड़ी के हेमचन्द्र जो कि हेमू के नाम से प्रसिद्ध है, ने दिल्ली की गद्दी पर अधिकार कर लिया। हेमचन्द्र, 'विक्रमादित्य' के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उसने अपने नाम से सिक्के जारी किए। एक माह बाद नवम्बर, 1556 ई. में मुगल सेना ने उसे परास्त कर दिया। कालान्तर में दिल्ली पर लम्बे समय तक मुगलों का शासन रहा। इन शासकों में मुख्यतः अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब इत्यादि थे। मुगल शासकों का सर्वाधिक प्रतिरोध मेवाड़ के महाराणाओं ने किया, जिसमें वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप प्रमुख थे।

वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप महान्

वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप का जन्म 9 मई, 1540 ई. (ज्येष्ठ शुक्ल 3, विक्रम संवत् 1597) को कुम्भलगढ़ में हुआ। इनके पिता का नाम महाराणा उदय सिंह व माता का नाम जैवन्ता बाई सोनगरा था। महाराणा उदयसिंह की 28 फरवरी, 1572 ई. में मृत्यु हो गई और उसी दिन महाराणा प्रताप का 32 वर्ष की आयु में गोगुन्दा में राज्यारोहण हुआ। यह शासन महाराणा प्रताप के लिए कांटों का मुकुट था, किन्तु स्वतन्त्रता प्रेमी महाराणा प्रताप ने इसे सहर्ष स्वीकार किया। वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। महाराणा प्रताप ने कुम्भलगढ़ और गोगुन्दा को केन्द्र बनाकर समस्त मेवाड़ राज्य को स्वतन्त्र कराने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। जनमानस को स्वतन्त्रता एवं संस्कृति की रक्षा के लिए प्रेरित किया। जनजाति वर्ग को संगठित कर उन्हें अपनी सेना का अंग बनाया। कुम्भलगढ़ से लगे गोड़वाड़ भू–भाग और अरावली की घाटियों में सैनिक व्यवस्था की। सिरोही व गुजरात से लगी सीमा व्यवस्था को संगठित किया।

महाराणा प्रताप

मेवाड़ से 1567 – 1568 ई. में हुए संघर्ष की भयंकरता से अकबर परिचित था। अतः शान्ति

प्रयासों एवं कूटनीति से समस्या को सुलझाने का प्रयास किया। उसने एक–एक करके चार शिष्ट मंडलों को महाराणा प्रताप के पास भेजा किन्तु महाराणा प्रताप ने उसके कूटनीतिक प्रयासों को एक दम विफल कर दिया।

हल्दीघाटी का युद्ध

प्रताप को अब अनुभव हो गया था कि युद्ध अवश्यंभावी है, तब प्रताप ने युद्ध की तैयारी प्रारंभ कर दी। मेवाड़ के मुख्य पहाड़ी नाकों (पहाड़ी क्षेत्र में प्रवेश के सँकडे मार्ग) एवं सामरिक महत्व के स्थानों पर अपनी स्थिति मजबूत करनी शुरु कर दी। मैदानी क्षेत्रों से लोगों को पहाड़ी इलाकों में भेज दिया तथा खेती करने पर पाबंदी लगा दी, ताकि शत्रु सेना को रसद सामग्री नहीं मिल सके। प्रताप को सभी वर्गों का पूर्ण सहयोग मिला। अतः जनता युद्ध के लिए मानसिक रूप से तैयार थी। उधर अकबर ने अन्य सैन्य अभियानों से मुक्ति पाकर मेवाड़ की ओर ध्यान केन्द्रित किया। उसने मानसिंह को प्रधान सेनानायक बनाकर प्रताप के विरूद्ध भेजा, जो लगभग पाँच हजार सैनिकों के साथ आया। 18 जून, 1576 ई. को प्रातः हल्दीघाटी के मैदान में युद्ध शुरू हुआ। महाराणा प्रताप ने युद्ध की शुरूआत की। उनके साथ रावत किशनदास, भीमसिंह डोडिया, रामदास मेड़तिया, रामशाह तँवर, झाला मान, झाला बीदा, मानसिंह सोनगरा आदि थे। प्रताप के चन्दावल दस्ते में पुरोहित गोपीनाथ, जयमल मेहता, चारण जैसा आदि तथा मध्य भाग के बाँयी ओर भामाशाह एवं अन्य सैनिक थे। चंदावल में ही घाटी के मुहानों पर राणा पूंजा के नेतृत्व में भील लोग तीर कमान के साथ मौजूद थे। हरावल दस्ते में चुण्ड़ावतों के साथ अग्रिम पंक्ति में हकीम खाँ सूर भी थे। मुगल सेना पर सर्वप्रथम आक्रमण इन्होंने किया, जिससे मुगल सेना पूर्ण रूप से

हल्दीघाटी का युद्ध

अस्त–व्यस्त हो गई। रही कसर प्रताप के आक्रमण ने पूरी कर दी। मुगल इतिहासकार बदायूँनी स्वीकार करता है कि मेवाड़ी सेना के आक्रमण का वेग इतना तीव्र था कि मुगल सैनिकों ने बनास के दूसरे किनारे से पाँच–छह कोस तक (10–15 कि.मी.) भागकर अपनी जान बचाई।

अब प्रताप ने अपने चेतक घोड़े को छलाँग लगवाकर हाथी पर सवार मानसिंह पर अपने भाले से वार किया, पर मानसिंह बच गया। उसका हाथी मान सिंह को लेकर भाग गया। इस घटना में चेतक का पिछला पैर हाथी की सूँड़ में लगी तलवार से जख्मी हो गया। प्रताप को शत्रु सेना ने घेर लिया। लेकिन प्रताप ने संतुलन बनाए रखा तथा अपनी शक्ति का अभूतपूर्व प्रदर्शन करते हुए मुगल सेना में उपस्थित बलिष्ठ पठान बहलोल खाँ के वार का ऐसा प्रतिकार किया कि खान के जिरह बख्तर सहित उसके घोड़े के भी दो फाड़ हो गए। इस दृश्य को देखकर मुगल सेना में हड़कम्प मच गया। अब प्रताप ने युद्ध को मैदान के बजाय पहाड़ों में मोड़ने का प्रयास किया। उनकी सेना के दोनों भाग एकत्र होकर पहाड़ों की ओर मुड़े और अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचे। तब तक मुगल सेना को रोके रखने का उत्तरदायित्व झाला मान को सौंपा। झाला मान ने अपना जीवन उत्सर्ग करके भी अपने कर्तव्य का पालन किया। इस युद्ध में मुगल सैनिकों का मनोबल इतना टूट चुका था कि उसमें प्रताप की सेना का पीछा करने का साहस नहीं रहा।

युद्ध का परिणाम

मेवाड़ की इस विजय ने और प्रताप के नेतृत्व ने जनमानस का विश्वास दृढ़ किया। इस युद्ध ने मुगलों के अजेय होने के भ्रम को तोड़ दिया। अब प्रताप वीर शिरोमणि के रूप में स्थापित हो गए। भारत में पहली बार मुगल सेना को करारी हार का सामना करना पड़ा। मुगल सेना को प्रताप का भय निरन्तर सताता रहा, इसलिए हल्दी घाटी से गोगुन्दा पहुँचने पर भी वह इस भय से उबर न सकी। प्रताप के एकाएक आक्रमणों के भय से मुगल लश्कर ने गोगुन्दा में अपने क्षेत्र के इर्द–गिर्द ईंटों से इतनी बड़ी दीवार का निर्माण कराया कि प्रताप के घुड़सवार भी कूदकर अन्दर न आ सकें। गोगुन्दा में मुगल सेना की हालात बन्दी जैसी हो गई थी। भीलू राणा पूंजा के नेतृत्व में प्रताप के सैनिकों ने गोगुन्दा की इतनी दृढ़ नाकेबन्दी कर दी कि बाहर से किसी प्रकार की खाद्य व अन्य सामग्री मुगल छावनियों में नहीं पहुँच सकी। इस कारण मुगल सैनिकों एवं जानवरों के भूखे मरने की नौबत आने लगी। निराश होकर मुगल सेना गोगून्दा खाली कर अकबर के दरबार में लौट गई। हल्दीघाटी की पराजय से त्रस्त होकर अकबर ने मानसिंह व आसफ खाँ के मुगल दरबार में उपस्थित होने पर रोक लगा दी थी। शाही सेना के जाने के बाद प्रताप फिर कुम्भलगढ़ लौट आए।

हल्दीघाटी के युद्ध के बाद अगले पाँच वर्ष तक प्रताप छापामार युद्ध प्रणाली से मुगलों को छकाते रहे। अकबर ने तीन बार शाहबाज खाँ को प्रताप के विरूद्ध भेजा, किन्तु उसे असफल होकर लौटना पड़ा। मुगलों को असहाय अवस्था में पाकर प्रताप ने प्रतिरक्षात्मक की अपेक्षा आक्रामक नीति अपनाई। उन्होंने इसका पहला प्रयोग दिवेर में किया। अक्टूबर 1582 ई. में प्रताप ने अपने सैनिकों के साथ मुगलों के प्रमुख थाने 'दिवेर' (राजसमंद) को घेर लिया। मुगल सेनानायक सुल्तान खाँ को जैसे ही

इस घेरे की खबर लगी, उसने आस–पास के 17 थानों के थानेदारों को बुला लिया। दिवेर थाने के पास दोनों सेनाएँ आमने–सामने हुई। सुल्तान खाँ हाथी पर सवार था और महाराणा प्रताप के साथ युवराज अमर सिंह सहित अनेक सरदार व भील सैनिक थे। प्रताप ने सुल्तान खाँ के हाथी को मार डाला तो वह भाग गया और घोड़े पर सवार होकर पुनः युद्ध भूमि में आया। अमरसिंह तलवार लेकर सुल्तान खाँ की तरफ लपके और तलवार का वार किया। सुल्तान खाँ ने तलवार के वार से बचने की कोशिश की तो अमरसिंह ने अपने भाले से उसे बींध डाला। इससे मुगल सेना वहाँ ठहर नहीं सकी। दिवेर युद्ध में भी प्रताप की निर्णायक जीत हुई। इसके बाद प्रताप कुम्भलगढ़ की तरफ बढ़े तथा कुम्भलगढ़ सहित आस–पास के सभी मुगल थानों पर अधिकार कर लिया। अगले दो वर्षों तक अकबर ने मेवाड़ में सैनिक अभियान जारी रखे, किन्तु उनमें असफलता के कारण सन् 1584 ई. के पश्चात् तो अकबर का प्रताप के विरूद्ध सेना भेजने का साहस ही नहीं रहा। अब प्रताप ने चावण्ड को अपनी नई राजधानी बनाई और आक्रामक नीति अपनाकर एक–एक कर अपने पिता के काल में अकबर के हाथों गए स्थानों को पुनः विजित कर लिया। 19 जनवरी, 1597 ई. को 57 वर्ष की अवस्था में चावण्ड में स्वाधीनता के इस महान् पुजारी ने अन्तिम सांस ली। चावण्ड में आज भी महाराणा प्रताप के महलों और भामाशाह के हवेली के खण्ड़हर देखे जा सकते हैं। चावण्ड के निकट बाडोली गाँव में प्रताप की समाधि बनी हुई है।

प्रताप महान् का व्यक्तित्व

महाराणा प्रताप श्रेष्ठ योद्धा और सच्चे जननायक थे। सभी धर्मों के लोग मातृभूमि के स्वाधीनता संघर्ष में प्रताप के साथ थे। प्रताप ने अपने व्यक्तित्व से मेवाड़ के प्रत्येक व्यक्ति को मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए सब कुछ न्यौछावर कर देने वाला योद्धा बना दिया। इससे महाराणा प्रताप जनमानस के लिए प्रातः स्मरणीय बन गए। अपने देश की स्वतन्त्रता और सार्वभौमिकता के लिए सतत् संघर्ष और उनका विविध क्षेत्र में योगदान उन्हें महान् सिद्ध करता है। युद्धों में दिवंगत वीरों के उत्तराधिकारियों को प्रताप ने पिता की तरह स्नेह दिया और उनके पुनर्वास के लिए अपूर्व प्रयास कर मानवाधिकारों के संरक्षण का आदर्श स्थापित किया। नारी सुरक्षा और संरक्षण के लिए प्रताप ने कई प्रयास किए। उनके प्रयासों की बदौलत मेवाड़ को भविष्य में जौहर जैसी त्रासदी नहीं झेलनी पड़ी। प्रताप ने कैद की गई मुगल स्त्रियों को सुरक्षित लौटाकर नारी सम्मान का पाठ पढ़ाया। अकाल–दर–अकाल जूझने वाली प्रजा और शासकों के लिए जल बचत और कम खर्च में जलाशय बनाने की तकनीक दी। यही नहीं पर्यावरण सुरक्षा को प्रत्येक शासक और नागरिक के कर्तव्य के रूप में परिभाषित किया। प्रताप का यह योगदान उनकी वैश्विक दृष्टि का परिचायक है। इसी ध्येय से प्रताप ने 'विश्ववल्लभ' (जो संसार को प्रिय हो) नाम से वृक्ष–आयुर्विज्ञान ग्रंथ की रचना करवाई। संस्कारी जीवन ही सबको अपेक्षित होता है, प्रताप ने इस उद्‌देश्य से 'व्यवहार आर्दश' जैसा ग्रंथ लिखवाया। विद्वानों और दूरदर्शी लोगों को संरक्षण दिया। इनमें संस्कृत विद्वान पंडित चक्रपाणी मिश्र प्रमुख थे। प्रताप के संरक्षण में लिखी गई 'राज्याभिषेक पद्धति' भारतीय शासकों के लिए आदर्श बनी। मेवाड़ और गुजरात के शासकों सहित मराठा शासक भी अपना अभिषेक इसी पद्धति से करवाने लगे।

चावण्ड रागमाला का चित्र

महाराणा प्रताप ने संगीत, मूर्तिकला और चित्रकला को संरक्षण दिया। अपने दरबार में निसारूद्दीन जैसे चित्रकार से छह राग और छत्तीस रागिनियों के ध्यान चित्र बनवाकर चावण्ड चित्र शैली को जन्म दिया। रागमाला श्रृंखला के ये चित्र अन्य कई क्षेत्रों के चित्रकारों के लिए अनुकरणीय बने। यह कला भारतीय चित्रकला की निधि हैं। प्रताप ने देश की समृद्धि को बनाए रखने के लिए धातुओं की खदानों की सुरक्षा की ओर प्रमुखता से ध्यान दिया। सभी धर्मों का आदर प्रताप के व्यक्तित्व की निराली विशेषता थी। जनजाति के मुखियाओं ने प्रताप के नेतृत्व में अपूर्व विश्वास किया। उदयपुर के निकट हरिहर जैसे मन्दिर उनके काल में शैव और वैष्णव धर्म की एकता को दर्शाता है।

इस प्रकार राष्ट्रप्रेम, सर्वधर्म सद्भाव, सहिष्णुता, करूणा, स्वाधीनता के लिए युद्ध, नीतिगत आदर्शों की पालना, मानवाधिकारों की सुरक्षा, नारी सम्मान, पर्यावरण और जल संरक्षण एवं सर्वसामान्य को आदर जैसे मूल्य तथा साहित्य व संस्कृति के प्रति सम्मान उनकी महानता के उज्ज्वल परिचायक हैं। महाराणा प्रताप की समाधि जन–जन को इस विराट चरित्र नायक के कीर्तिमय जीवन और आदर्शों की प्रेरणा देती रहेगी। प्रताप के बारे में कहा गया है कि–

पग–पग भम्या पहाड़, धरा छोड़ राख्यो धरम।
महाराणा मेवाड़, हिरदे बसया हिन्द रे।।

स्वाभिमानी अमरसिंह राठौड़

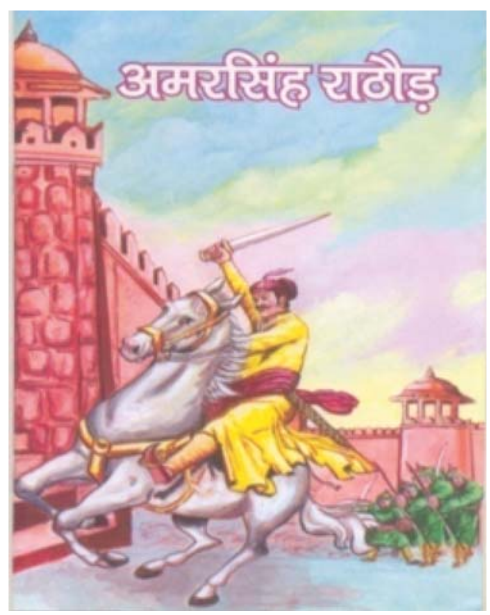

राजस्थान के एक अन्य सपूत जिसने मुगल शासक शाहजहाँ को उसके दरबार में जाकर चुनौती दी थी, वह अमरसिंह राठौड़ राजस्थान में शौर्य, स्वाभिमान एवं त्याग का प्रतीक माना जाता है। उसका जन्म 12 दिसम्बर 1613 ई. में हुआ था। वह जोधपुर के शासक गजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था। उसकी शिक्षा–दीक्षा उत्तराधिकारी राजकुमार के रूप में हुई थी। वह कुशाग्र बुद्धि, चंचल स्वभाव एवं स्वाभिमान से परिपूर्ण था। अतः अमरसिंह की कीर्ति चारों ओर फैल गई। उसको महाराजा गजसिंह का स्वाभाविक उत्तराधिकारी माना जाता था। किन्तु गजसिंह की उप पत्नी अनारा के षड्यंत्र के कारण अमरसिंह को

राजगद्दी न देकर कनिष्ठ पुत्र जसवंतसिंह को मारवाड़ का शासक बना दिया गया। मुगल शासक शाहजहाँ ने जसवन्तसिंह को मारवाड़ के शासक की मान्यता दे दी। अमरसिंह ने इस निर्णय का प्रतिकार नहीं किया। पिता के समय में ही अमरसिंह मुगल बादशाह की सेवा में आ गया था। इस घटना के बाद शाहजहाँ ने अमरसिंह को उच्च मनसब, राव की पद्वी और नागौर का परगना दिया। अमरसिंह नागौर की प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़कर पुनः शाहजहाँ के दरबार में चला गया।

अमरसिंह की सूझ–बूझ और योग्यता से शाहजहाँ परिचित था। अतः अनेक कठिन अभियानों में वह अमरसिंह को भेजता रहता था। उसे जूझारसिंह बुन्देला, राजा जगतसिंह (कांगड़ा), ईरान के शाह सफी, शाह भौंसले के विरुद्ध और कंधार के अभियानों पर भेजा गया। अमरसिंह स्वयं स्वाभिमानी था तथा स्वाभिमानी व्यक्तियों का विशेष ध्यान रखता था। केसरीसिंह जोधा को बादशाह की आज्ञा के कारण अटक पार जाना था, किन्तु जब आदेश पालना में हिचकिचाहट बताई तो उसका मनसब जप्त कर लिया। इसकी सूचना जब अमरसिंह को हुई तो वह केसरीसिंह से मिलने पहुँचा और बादशाह की नाराजगी की परवाह किये बगैर उसने 30 हजार का पट्टा तथा नागौर की सुरक्षा का उत्तरदायित्व उसको सौंपा। इस प्रकार जोधा के सम्मान की रक्षा की। अपने स्वाभिमान पर भी अमरसिंह ने कभी आँच नहीं आने दी। कतिपय घटनाओं के कारण अमरसिंह ने मुगल कोष में जमा कराए जाने वाले कर को स्पष्ट रूप से देने से इन्कार कर दिया। राज्य की ओर से बार–बार मांग होने पर भी उसने अपने निश्चय में कोई परिवर्तन नहीं किया। अमरसिंह विरोधी मनसबदारों को उसके विरूद्ध बादशाह के कान भरने का अच्छा अवसर मिला। इसमें सलावत खां मुख्य था। इसका प्रभाव बादशाह पर भी पड़ा। उसने एक दिन अमर सिंह को कटु वचन सुनाये। अमरसिंह का स्वाभिमान जाग उठा और क्रोध से उसके नेत्र लाल हो गये। वह बादशाह की ओर बढ़ा। जब सलावत खाँ ने अपशब्द कहते हुए उसे आगे बढ़ने से रोकने के प्रयास किया तो उसे अमरसिंह के हाथों मौत का शिकार होना पड़ा। भयग्रस्त बादशाह भागकर अपनी जान बचा पाया। मुगल दरबार में अमरसिंह जब अकेला था, मुगल मनसबदार द्वारा धोखे से मार दिया गया। इस घटना में अमरसिंह की भले ही मृत्यु हो गई किन्तु आदर्शों के प्रति उसका समर्पण आज भी हमें प्रेरणा देता है। रचनाधर्मियों ने उसके स्वाभिमान और त्याग से आकर्षित होकर अनेक प्रेरणादायक काव्यों की रचना की।

वीर दुर्गादास राठौड़

राजस्थान को गर्वित करने वाला अन्य व्यक्तित्व वीर दुर्गादास राठौड़ है। उसका जन्म 13 अगस्त, 1638 ई. में मारवाड़ के सालवां गाँव में हुआ था। उसका पिता आसकरण मारवाड़ के महाराजा जसवंत सिंह का मंत्री था। दुर्गादास की माता ने उसमें देश तथा मातृभूमि के प्रति भक्ति की भावना भर दी थी। 28 नवंबर, 1678 ई. को महाराजा जसवंत सिंह की जमरूद में मृत्यु हो गई। उस समय उनका कोई पुत्र जीवित नहीं था, लेकिन उनकी दो रानियाँ गर्भवती थी। उन्हें दुर्गादास तथा अन्य सरदार अपने साथ लेकर लाहोर के लिए चल पड़े। लाहोर पहुँचने पर दोनों रानियों ने दो पुत्रों को जन्म दिया। एक की कुछ समय बाद मृत्यु हो गई तथा दूसरा जो जीवित बचा उसका नाम अजीत सिंह रखा। मारवाड़ के

सरदारों को विश्वास था कि औरंगजेब अजीत सिंह को जसवंत सिंह का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लेगा, किन्तु उनकी आशा शीघ्र ही ध्वस्त हो गई। औरंगजेब ने रानियों सहित मारवाड़ के दल को दिल्ली पहुँचने का आदेश भिजवा दिया। यही नहीं औरंगजेब ने मारवाड़ राज्य को खालसा किए जाने का आदेश देकर मुगल अधिकारी को नियुक्त कर दिया।

वीर दुर्गादास राठौड़

अजीत सिंह की रक्षा

दुर्गादास राठौड़ सरदारों के दल के साथ अजीतसिंह को लेकर राजधानी दिल्ली पहुँचा और औरंगजेब से अजीतसिंह को मारवाड़ राज्य देने का आग्रह किया। औरंगजेब ने इस्लाम स्वीकार कर लेने की शर्त पर ही उसे मारवाड़ का राज्य देने की बात कही। दुर्गादास तथा राठौड़ सरदार इस अपमानजनक शर्त को मानने के लिए तैयार नहीं थे। अजीत सिंह को दिल्ली में रखना भी उसकी सुरक्षा के लिए खतरा था। अतः शीघ्र ही उसे औरंगजेब के चंगुल से निकालना आवश्यक था। दुर्गादास अजीतसिंह को जिस दूरदर्शिता से औरंगजेब के चंगुल से बचाकर मारवाड़ लाया वह एक चमत्कार से कम नहीं था। उसने पीछा करती हुए मुगल सेना का भी सामना किया।

राठौड़–मुगल संघर्ष

शेष बचे राठौड़ तथा दुर्गादास सुरक्षित मारवाड़ के सालावास गाँव पहुँचे, जहाँ से दुर्गादास ने अजीतसिंह को सिरोही भेजा। सिरोही के महाराव वैरीसाल सिंह की देख–रेख में कालन्द्री गाँव के ब्राह्मण जयदेव की पत्नी ने उन्हें पाला। अजीतसिंह के मारवाड़ आने की सूचना पाकर राठौड़ दुर्गादास के नेतृत्व में संगठित होने लगे। उन्होंने मुगल फौजदार को जोधपुर से खदेड़कर नगर पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब ने जोधपुर पर पुनः अधिकार हेतु विशाल सेना भेजी तथा स्वयं अजमेर में आ गया। राठौड़ों ने अब छापामार पद्धति से मुगलों को छकाना शुरू कर दिया। मेवाड़ से सहयोग प्राप्त करना दुर्गादास का एक महत्वपूर्ण कार्य था।

राठौड़–सिसोदिया गठबंधन

दुर्गादास ने संघर्ष बढ़ता देखकर मेवाड़ के महाराणा राजसिंह से अजीतसिंह को आश्रय देने की प्रार्थना की। महाराणा ने इसे स्वीकार कर लिया। यही नहीं महाराणा ने राठौड़ों को पूर्ण सहायता का आश्वासन भी दिया। उधर मारवाड़ में राठौड़ों ने मुगलों का कड़ा प्रतिरोध किया। औरंगजेब ने शहजादे अकबर को मारवाड़ में भेजा, किन्तु वह भी राठौड़ों को नियन्त्रित करने में पूर्णतः असफल रहा। इसके विपरीत दुर्गादास ने शहजादे अकबर को उसके पिता औरंगजेब के विरूद्ध उकसा दिया। अकबर का औरंगजेब के विरूद्ध विद्रोह करवा देना दुर्गादास की महान् सफलता थी। दुर्गादास राठौड़ के प्रयासों से

मारवाड़ और मेवाड़ के मध्य राठौड़–सिसोदिया गठबंधन हुआ। यह दुर्गादास राठौड़ का दूसरा महान् कार्य था। बालक अजीतसिंह को मेवाड़ में आश्रय देने और औरंगजेब की नीतियों का विरोध करने का संकल्प महाराणा राज सिंह ने स्वीकार कर लिया। राजसिंह ने औरंगजेब को एक और करारा झटका उस समय दिया जब औरंगजेब किशनगढ़ की राजकुमारी चारूमति से विवाह करना चाहता था, जिसके लिए चारूमति तैयार नहीं थी। चारूमति के आग्रह करने पर राजसिंह ने उससे विवाह किया। राजसिंह ने औरंगजेब की मन्दिर विध्वंस नीति का प्रतिरोध करते हुए द्वारकाधीश और श्रीनाथ जी को मेवाड़ में स्थापित किया। औरंगजेब ने 1679 ई. में जजिया कर पुनः लगाया तो राजसिंह ने इसके विरोध में उसको पत्र लिखा। औरंगजेब ने शहजादा अकबर के माध्यम से अपने विरूद्ध बने राठौड़–सिसोदिया गठबंधन को तोड़ने का प्रयास किया। वस्तुतः मेवाड़ के महाराणा राजसिंह व दुर्गादास के संयुक्त प्रयासों से उत्तर भारत में औरंगजेब के दमनकारी और कुटनीतिक प्रयासों का विरोध हुआ। इस कारण 1680 ई. में देबारी में मेवाड़ और औरंगजेब की सेना में युद्ध हुआ। दुर्गादास मराठों की सहायता लेने दक्षिण में गया तो शहजादा अकबर भी उसके साथ था। यह औरंगजेब के लिए एक बड़ी चुनौती थी। इसी दौरान महाराणा राजसिंह की मृत्यु से उसको राहत मिली। नए महाराणा से समझौता कर वह दक्षिण की ओर चल पड़ा।

दुर्गादास का मराठा सहयोग प्राप्त करना उसकी एक बड़ी कुटनीतिक विजय थी। मराठा–शक्ति की सक्रियता के कारण औरंगजेब को उत्तरी भारत से भागकर दक्षिण की ओर जाना पड़ा। इससे मारवाड़ पर मुगल सैनिक दबाव कम हो गया। औरंगजेब दक्षिण में इतना घिर गया कि वह पुनः जीवित उत्तर भारत में न आ सका। औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिलते ही अजीतसिंह ने पुनः मारवाड़ पर अधिकार कर लिया। यह सूचना पाकर दुर्गादास भी मारवाड़ लौट आया, किन्तु इस बार उसे अजीतसिंह से उत्साहवर्धक स्वागत नहीं मिला। दुर्गादास की अनुपस्थिति में मारवाड़ के सरदारों द्वारा उनके खिलाफ किए गए षड़यंत्रों के कारण दुर्गादास जैसे देशभक्त, दूरदर्शी और महान् कूटनीतिज्ञ को मारवाड़ छोड़ कर मेवाड़ आना पड़ा। मेवाड़ ने उनको आश्रय ही नहीं दिया, अपितु सम्मानपूर्वक रामपुरा की जागीर देकर वहाँ का प्रशासक भी नियुक्त कर दिया।

दुर्गादास जीवन के अन्तिम वर्षों में उज्जैन (मध्यप्रदेश) में ही रहे। वहीं 22 नवंबर, 1718 को

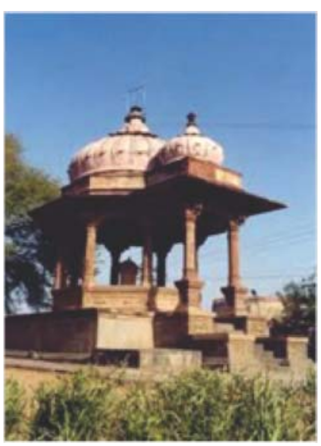
दुर्गादास की छतरी

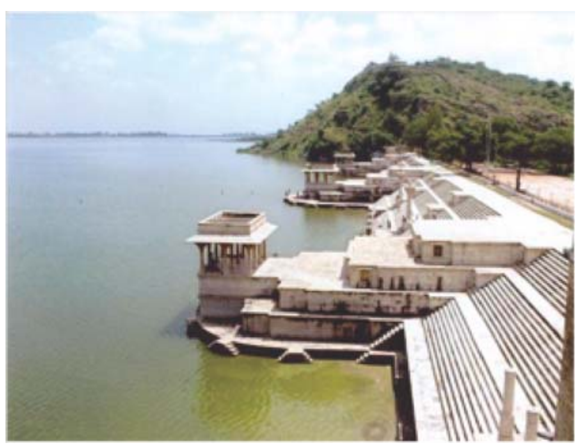
महाराणा राजसिंह द्वारा निर्मित नौ–चौकी राजसमंद

उनका देहांत हो गया। उज्जैन में क्षिप्रा नदी के पूर्वी किनारे पर लाल पत्थर की छतरी स्वामिभक्त सपूत के स्मारक के रूप में मौजूद है।

गतिविधि–
मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के जीवन चरित्र एवं उनके द्वारा निर्मित नौ–चौकी पर जानकारी संकलित कीजिए।

महाराजा सूरजमल

महाराजा सूरजमल

महाराजा सूरजमल भरतपुर के लोकप्रिय शासक थे। उसके पिता बदनसिंह ने डीग बसाकर इसे अपनी राजधानी बनाया। सूरजमल ने भरतपुर शहर की स्थापना की। सूरजमल से पूर्व जाट नेता गोकुल औरंगजेब की मन्दिर–मूर्ति विध्वंस नीति का प्रबल विरोधी रहे। मथुरा और आगरा के जाट बहुत समय तक मुगलों के अत्याचार और कुशासन का शिकार रहे। गोकुल राजाराम ने मुगलों के अत्याचारों का प्रबल विरोध किया तथा सिकन्दरा में स्थित अकबर के मकबरे से बहुमूल्य रत्नों व सोने–चांदी के पत्थरों को उखाड़ लिया। राजाराम के बाद चूड़ामन ने आजीवन मुगलों से संघर्ष किया।

जयपुर के महाराजा जयसिंह की मृत्यु के बाद हुए उत्तराधिकार युद्ध में सूरजमल के सहयोग से ईश्वरी सिंह विजयी हुआ और जयपुर की गद्दी पर बैठा। मई 1753 ई. में सूरजमल ने फिरोजशाह कोटला पर कब्जा कर लिया। मराठों ने जनवरी 1754 ई. से मई 1754 ई. तक भरतपुर के कुम्हेर के किले को घेरे रखा, पर वे इस किले को नहीं जीत पाए और उन्हें संधि करनी पड़ी। 1761 ई. में पानीपत की तीसरी लड़ाई में अहमद शाह अब्दाली के हाथों हार के बाद शेष बचे मराठा सैनिकों के खाने–पीने, इलाज व कपड़ों की व्यवस्था महाराजा सूरजमल ने की।

सूरजमल ने अपने प्रभुत्व वाले क्षेत्रों में किले व महल बनवाए, जिनमें प्रसिद्ध लोहागढ़ किला भी शामिल है। मराठों के पतन के बाद सूरजमल ने गाजियाबाद, रोहतक, झज्जर, आगरा, धौलपुर, मैनपुरी, हाथरस, बनारस, फर्रूखनगर इत्यादि इलाके जीत लिए। 25 दिसम्बर, 1763 ई. को महाराजा सूरजमल की मृत्यु हो गई।

शब्दावली

हरावल	–	सेना का अग्रिम भाग
चंदावल	–	सेना का पीछेवाला भाग
छापामार युद्ध	–	अचानक आक्रमण कर भाग जाने वाली युद्ध की एक विधा
प्रतिरक्षात्मक	–	सुरक्षात्मक
खालसा	–	केन्द्रीय अधिकार क्षेत्र

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न एक व दो के सही उत्तर कोष्ठक में लिखिए–

1. महाराणा प्रताप के घोड़े का नाम था–
   (अ) लीलण (ब) चेतक (स) केसर (द) ऐटक ( )
2. सेना का हरावल दस्ता होता है–
   (अ) सेना का अग्रिम भाग (ब) सेना के मध्य का भाग
   (स) सेना के पीछे का भाग (द) सम्पूर्ण सेना ( )
3. महाराणा प्रताप के व्यक्तित्व की विशेषताएँ बताइए ।
4. विक्रमादित्य के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठने वाला राजा कौन था ?
5. महाराजा सूरजमल ने राजस्थान के किस शहर की स्थापना की थी ?
6. दुर्गादास राठौड़ का अन्तिम समय कहाँ व्यतीत हुआ ?
7. महाराणा प्रताप को अधीन करने के लिए अकबर के कूटनीतिक प्रयासों का उल्लेख कीजिए।
8. दुर्गादास राठौड़ ने किस प्रकार मारवाड़ के उत्तराधिकारी अजीतसिंह की रक्षा की?
9. हल्दी घाटी के युद्ध पर निबन्ध लिखिए।
10. अमरसिंह राठौड़ का चरित्र चित्रण कीजिए।

गतिविधि–

1. राजस्थान के विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों एवं इमारतों के चित्र संकलित कर उनसे संबंधित ऐतिहासिक घटनाओं की जानकारी अपने विषयाध्यापक एवं अन्य व्यक्तियों के माध्यम से प्राप्त कीजिए।
2. महाराणा प्रताप के जीवन से सम्बन्धित प्रेरणादायी घटनाओं का विद्यालय में मंचन करें।